महाश्वेता देवी का '1084वें की माँ' एक सामाजिक चेतना

मोहन लाल राठौड़[1], योगेन्द्र कुमार[2]

[1]राजकीय महाविद्यालय, रामगढ़
[2]ख्वाजा गरीब नवाज़ महाविद्यालय खारची

साहित्य की विभिन्न विधाओं में भांति-भांति से स्त्री के आर्तनाद को, विषाद और पीड़ा को उजागर किया गया है। स्पष्ट है उपन्यास भी इससे अछूते नही हैं। हिन्दी उपन्यासों में स्त्री जीवन का जो चित्रण प्रायः किया जाता रहा है, उसमें उपेक्षित दशाओं को ही दर्शाया गया है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास 'सोना और खून' में बालिका को जबरन 'सती' करने का उल्लेख मिलता है, तो हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में महामाया जैसी झंझावातों से घिरी प्रखर औरत का कथन भी स्त्रियों की दारूण दशा को ही सूचित करता है।

महाश्वेता देवी कृत '1084वें की माँ' की सुजाता भी भारतीय समाज में स्त्रियों के प्रति ऐसे ही कुलबुलाते और नकारात्मक दृष्टिकोण से आहत् दृष्टव्य होती है। वास्तव में पुरूष प्रधान समाज में नारी को प्रायः दासतामयी जीवन ही गुजारना पड़ा है और वह सम्पन्न एवम् सुन्दर होने के उपरान्त भी किसी न किसी स्तर पर पुरूष की दासी ही बनाई जाती है। '1084वें की माँ' का दिव्यनाथ अपनी पत्नी सुजाता के प्रति भी ऐसी ही मानसिकता लेकर चलता है कि सुजाता उसकी दासी की तरह जैसा चाहू वैसा करें। यद्यपि अधिकांश उपन्यासों में स्त्री स्वयं अपने दासत्व को स्वीकार करती दिखाई देती है, जैसे यशपालकृत दिव्या की धाता "अच्छे दास की गति स्वामी के साथ है। मैं तेरी दासी हूँ। विपत्ति में तुझे छोड़कर परलोक के लिए किस प्रकार पातक संचय करूँ।" परन्तु सुजाता ऐसे किसी दासत्व को स्वीकारती नहीं, वह मानती है कि नारी में आत्मवल है तो वह भी पुरूष से किसी स्तर पर कम नहीं है। भारतीय परिवेश से लेकर वैश्विक परिदृश्य तक में यह देखने में आता है कि पुरूष वृद्धावस्था में बिना तर्क के दूसरी शादी करता है, इसका कारण परिवार को संभालना मात्र नहीं होता। कई पुरूष एक बीवी के होते हुए दूसरी शादी तो नहीं करते किन्तु पर स्त्रीगमन अवश्य करते हैं। '1084वें की माँ' का दिव्यनाथ सुजाता की तरफ ध्यान न देकर अपनी टाइपिस्ट के साथ अवैध संबंध बनाता है. वस्तुतः यह एक सामाजिक समस्या है और ऐसे दुराचार के कारण ही समाजभ्रष्टता और पारिवारिक विखण्डन की स्थिति उत्पन्न होती है।

हमारा समाज ऐसा है कि पुरूष स्वच्छन्द है, पर स्त्री के लिए सर्वत्र सामाजिक-पारिवारिक बेड़ियां हैं। रंगभूमि की स्त्री पात्र इन्दु इसी को इंगित करती है- 'मैं बंध गई, वह मुक्त है। मुझे यहाँ आज तीन महीने होने आये हैं। पर तीन बार से ज्यादा होने नहीं आये और वह भी एक घंटे के लिए और सब कार्यों के लिए फुर्सत है, अगर फुर्सत नहीं है, तो सिर्फ वहां आने की। मैं तुम्हें चेताए देती हूँ।"" '1084वें की माँ' की सुजाता भी अपने पति दिव्यनाथ से कुपित हो जाती है और वह परम्परागत दब्बू भारतीय नारी की परिभाषा से बाहर आकर विरोध करती है-" नौकरी न छोड़ना सुजाता का दूसरा विद्रोह है। पहला विद्रोह उसने तब किया था जब व्रती दो साल का था। दिव्यनाथ उन्हें पांचवी बार माँ बनने की किसी भी तरह राजी न कर पाए थे।

वास्तव में स्त्री जीवन के अनेक कष्ट दुःख और वेदना अनेक उपन्यासों में सम्मुख आये हैं, 'झूठा सच' (यशपाल) में 'सिन्हा' कनक के प्रति सहानुभूति प्रकट करके उसे क्लब में ले जाता है और शराब पिलाकर उसके शरीर से खेलना चाहता है। अवस्थी भी ऐसा ही पात्र है जो कनक को नौकरी दिलाकर अपने एहसानों का प्रतिफल उसके शरीर से खेलकर प्राप्त करना चाहता है...' 1084वें की माँ' का दिव्यनाथ भी ऐसे पात्रों से कुछ खास अलग नहीं है। भारतीय

समाज में पुरुष प्रधान मानसिकता इतनी हावी है कि पुरुष का दंभ उसकी घृष्टता ही प्रायः विजयी होती है और स्त्री शोषित होकर भी अपमानित होती है, उसे न्याय नहीं मिलता.....उल्टा उस पर कुल्टा या दुश्चरित्रा होने के आरोप मढ़ दिये जाते हैं। आवश्यकता इस बात की है किपुरूष स्त्री का आदर करे क्योंकि इसके बिना जीवन निर्वाह कठिन है। विवाह के पश्चात् जब युवक-युवती एक दम्पत्ति बन जाते है तो उनको आजीवन साथ-साथ रहते हुए सामाजिक दायित्वों को निभाना पड़ता है। इस दाम्पत्य जीवन की सफलता के लिए पति पत्नी के जीवन में समरसता का होना परमावश्यक है। सामंजस्यता या समरता के अभाव में दाम्पत्य जीवन अशान्त और कलह युक्त रहता है। सुजाता और दिव्यनाथ के दाम्पत्य संबंधों के क्रमशः विखण्डित हो जाने का कारण भी ऐसे ही परिस्थितियाँ हैं।

जब पति-पत्नी के बीच कलह और अलगाव होता है तो उनकी सन्तानों पर भी इसका असर पड़ता है। सन्तानें या तो नीया या तुली जैसी ढोंगी और विलासी हो जाती हैं या फिर व्रती की तरह भ्रमित होकर अपनी अलग राह चुन लेती है जिसका अन्त कारूणिक होता है। वास्तव में दाम्पत्य जीवन की अनेक समस्याओं के कारण पारिवारिक अव्यवस्था और बिखराव होता है और इस प्रकार के अनेक परिवारों के कारण समाज भी वैसा ही होता जाता है।

असंयत और असंतुष्ट, दिग्भ्रमित समाज के कारण अनेक राष्ट्रीय समस्याएँ भी उत्पन्न होती हैं, इसका एक प्रमाण नक्सलवादी समस्या के रूप में भी हमारे सामने आता है। यद्यपि अनेक प्रबुद्ध विचारकों का मत यह है कि नक्सलवादी समस्या आर्थिक असमानता और सामाजिक असंतोष के कारण ही पनपी है लेकिन इसकासंचालन करने वाले, नक्सलवाद को पोषित करने वाले जो युवा है उनकी समस्या पारिवारिक पीड़ाओं से ही उभरी होती है। आर्थिक असमानता भी वस्तुतः युवा उद्वेलन और नक्सलवादी क्रान्ति जैसे आन्दोलनों को जन्म देती है। जब आदमी के पेट में अन्न का एक दाना नहीं होता, उसके परिवारजन भूख से मरते हैं और वह देखता है कि आस-पड़ौस के कई लोग बिना खास मेहनत किए खा पीकर अधा रहे है तो वह उद्वेलित होता है. कुपित होकर हथियार उठाता है और अपना अधिकार छीनने को उतारू हो जाता है ताकि अपने परिवार वालों का पेट भर सके, उन्हें न्याय दिला सके।

समु और ललटू जैसे लोग शायद इस भूख और अन्याय के कारण नक्सलवाद का सहारा लेकर अपना हक हासिल करना चाहते हैं लेकिन उन्हीं जैसे युवाओं के सहयोगी व्रती जैसे लोगों की समस्या और है... ऐसे लोग परिवार में प्यार नहीं पाते, उनसे कटते जाते हैं और प्यार की तलाश में, भावनात्मक समर्थन की तलाश में निम्नतर और गरीब लोगो तक से आत्मीय संबंध स्थापित कर लेते हैं। परिवार जनों की उपेक्षा और तिरस्कार से उपजा रोष उनके लिए गरीबों के भले का हथियार बन जाता है, क्योंकि उन्हीं गरीबों ने उन्हे दिल से चाहा है, हृदय की गहराईयों से प्रेम किया है। ऐसे युवाओं को कोई फिक्र नहीं रहती कि दिव्यनाथ की तरह के उनके पिता समाज में 'सम्मानित' और 'प्रतिष्ठित' हैं, इससे उनकी 'प्रतिष्ठा' को बट्टा लग सकता है। नसों में बहता रक्त खोलते फौलाद की शक्ल में दलकर अन्याय का नाश करने को उतारू हो जाता है, इस कर्म में, इस क्रान्ति में उन्हें मौत भी आ सकती है, इसकी फिक्र ऐसे युवा नहीं करते।

आर्थिक असमानता के कारण उपजा उद्वेलन असंतोष और अराजक मानसिकता का समाजपरक और समाजहितकारी सर्वमान्य समाधान ढूंढ़ना बहुत जरूरी है क्योंकि इसके बिना पहले से दो भागों में बंटे समाज के बीच की खाई और भी अधिक चौड़ी होती जाएगी और इसके कारण अमीर और गरीब का परस्पर संघर्ष और भी अधिक भयावह होकर उभरेगा जो किसी भी दृष्टि से उचित नहीं होग..... विशेषकर राष्ट्रीय हित में तो कदापि नहीं ही होगा।

'1084वें की माँ' उपन्यास में सामाजिक चेतना एक बड़े फलक पर उभर कर सम्मुख आई है। समाज में रिश्तों की कुलबुलाहट, परिवारों का विघटन, नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों का बेहयाई से पतन, युवाओं के जोश और ऊर्जा का अनुचित मार्ग पर विभाजन होना, युवाओं द्वारा समाज हित में किये जा रहे संघर्ष और क्रान्ति को जनसामान्य और प्रबुद्ध व बुद्धिजीवी लोगों द्वारा समर्थन न देना। व्यवस्था, तंत्र राजनीति और मीडिया तक में पराभव की स्थिति का होना आदि ऐसी समस्याएँ हैं जो इस उपन्यास के माध्यम से सामने रखी गयी हैं। माता-पिता के परस्पर मनमुटाव के कारण उनकी संतानों पर कैसा असर पड़ता है इसके उदाहरण तुली, नीया, व्रती आदि हैं। पति के गलत आचरण और अनैतिक गैर जिम्मेदार व्यवहार के कारण पत्नी कितनी दुःखी होती है उसे दिव्यनाथ सुजाता के रिश्ते में ढूँढा जा सकता है। ये 'रिश्ताई' समस्या केवल '1084वें की माँ" में ही नहीं है अपितु अन्योन्येक उपन्यासों में भी है। स्पष्टतया पति की क्षुद्र एवं संकीर्ण प्रवृत्ति के कारण दाम्पत्य जीवन दुःखी बन जाता है। 'प्रेमाश्रम' (प्रेमचन्द) का ज्ञानशंकर अपनी नीचता, संकीर्णता

और स्वार्थपरायणता के कारण अपने चाचा से झगड़ा करता है और ज्ञानशंकर की पत्नी जब उन्हें समझाने का प्रयास करती है तो ज्ञानशंकर उसे झिड़क देता है। 'वह शिक्षित होकर भी अपनी पत्नी का उतना ही आदर करते थे जितना अपने पैरों के जूते का। अतएव उनका दाम्पत्य जीवन, जो चित्त की शान्ति का एक प्रधान साधन है, सुखकर नहीं था।
दिव्यनाथ भी सुजाता को एक शो-पीस से ज्यादा नहीं समझता, उसे '1084वें की माँ' सुजाता से भावनात्मक रूप से कोई लेना-देना नहीं, हाँ केवल शारीरिक और सामाजिक कारणों से ही वह उसे स्वीकार करता है अन्यथा उसके लिए वह 'आऊट डेटेड' और 'पुरानी' हो चुकी है, केवल' विकल्प' बची रह गयी है। महाश्वेता देवी ने उक्त प्रकार की पारिवारिक सरलमयी दशाओं का चित्रण करने के अतिरिक्त और प्रकार से भी मानवीय पहलूओं और समस्याओं को दर्शाया है। महाश्वेता देवी की चिंता उन लोगों के लिए है जो एक असहिष्णु और उत्पीड़क समाज के शिकार हैं और प्रशंसक भाव उन सबके लिए है जो विरोध के स्वर को मुखर करते है। यह सोच उनके लेखन में निरन्तर प्रवाहित होता है। इस लेखन की विशिष्टता का कारण है समाज के उपेक्षित और वंचित वर्गों के इतिहास में उनकी गहरी दिलचस्पी। महत्वपूर्ण बात यह है कि इन उपेक्षित वर्गों के साथ महाश्वेता देवी का तादात्म्य केवल लेखन तक ही सीमित नहीं है, पिछले कई दशकों से वे निर्धनों, विशेषकर, आदिवासियों की स्थिति को सुधारने के सभी प्रयासों को सक्रिय समर्थन देती रही हैं। वास्तव में आदिवासी समाज भारत में सदा से ही उपेक्षित रहा है और आज भी वह अन्य वर्गों के मुकाबले लगभग अविकसित ही हैं..... नई पीढ़ी के युवा आदिवासी इस स्थिति को एकटक बदलना चाहते हैं, फिर उन्हें इससे फर्क नहीं पड़ता कि इस बदलाव के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले साधन और विचारधारा हिंसक होंगे या अहिंसक । महाश्वेता देवी के लगभग सभी उपन्यासों में '1084वें की माँ' की तरह ही युवा आक्रोश और नक्सली समस्या का उद्घोष दिखाई देता है। 'मास्टर साहब' नामक उपन्यास भी ऐसी ही स्थितियों परिस्थितियों को पेश करता है। व्यवस्था और तंत्र ने कभी नक्सली समस्या के मूल कारणों को समझने की कोशिश नहीं की. इसे केवल 'निम्न स्तरीय स्थानीय आंशिक आतकवाद' की संज्ञा देकर उपेक्षित करने का प्रयास किया। इस उपेक्षा के कारण इन नक्सली युवाओं का आक्रोश इतना बढ़ गया कि ये आज विराट उग्रता लेकर विस्तृत क्षेत्र में फैल गये हैं..... यह भी स्पष्ट है कि इन लोगों को उपेक्षित और शोषित तबकों का समर्थन हासिल है और इसी कारण इनका आन्दोलन भी इतना सफल रहा है। आंध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, उड़ीसा, महाराष्ट्र का कुछ भाग, असम का कुछ भाग और बंगाल तथा बिहार आदि में नक्सलवादी संगठित और व्यवस्थित होकर सरकार और तंत्र को चुनौती दे रहे है और अपने प्रभाव क्षेत्र में एक समानान्तर व्यवस्था तथा तंत्र कायम करके भारत सरकार और राज्य सरकारों को ठेंगा दिखा रहे हैं। सरकार को अब लगता है कि शायद आदिवासी और उपेक्षित शोषित अन्यायग्रसित इन लोगों का क्रोध नियंत्रण से परे हो रहा है और हालात इतने बिगड़ गए है कि सरकार अपने ढुलमुल रवैये और पूर्वाग्रहों के चलते इस आन्दोलन को नियंत्रित नहीं कर पा रही है इस आन्दोलन के युवाओं को 'मुख्यधारा' में लोटाने के लिए उसके पास कोई योजना नहीं है, कभी वह 'सल्वा जुडम' (नक्सल विरोधी वर्गों को तैयार करना, सशस्त्र करना) जैसे अनमने प्रयोग करती है, तो कभी इसे 'चीनी क्रांति' का भौंडा स्वरूप बताने की कोशिश करती है। इस समस्या के सामाजिक और आर्थिक कारणों को सरकार और सरकार में बैठे मंत्री - अधिकारी समझकर भी अनदेखा कर रहे हैं। वस्तुतः हमने युवाओं के शहरी जोश को ही हमेशा तवज्जो दी है, ग्रामीण युवाओं की तरफ कोई खास ध्यान दिया ही नहीं है और इसी के कारण ग्रामीण युवा- उनमें भी दलित और शोषित ग्रामीण युवकों में विरोध, खुदबुदाहट और उद्वेलन पनपा और उन्हें लगा कि जो व्यवस्था, जो सरकार हमारी बात नहीं सुनती, हम पर ध्यान नहीं देती उसे मजबूर किया जाए ताकि वह हम पर ध्यान दे। व्रती जैसे युवा भी कदाचित् इन उपेक्षित युवाओं को इसीलिए समर्थन दे बैठते हैं क्योंकि वह भी किसी न किसी स्तर पर, किसी न किसी तरह से अपेक्षित और तिरस्कृत है और उन युवाओं का दर्द उसे अपने दर्द सा लगता है शायद इसी कारण वह उन्हें समर्थन और सहयोग देते हैं। इस प्रकार के आन्दोलन में व्रती जैसे युवा मरकर धरती में दफन हो जाते है या उनकी चित्त की राख उड़कर उन्हीं के कार्यक्षेत्र में संदेश देती हुई फैल जाती है पर इन युवकों से शहरी समाज और गांवो तक का अभिजात्य और उच्च वर्ग इत्तेफाक नहीं रखता, उनकी विचारधारा को समर्थन नहीं देता। यहाँ तक कि व्रती जैसे युवाओं के अपने घर वाले भी उनकी इस विचारधारा और इस प्रकार की शहादत के कारण खुद को मुश्किल में पाते हैं और बचने की कोशिश करते हैं-" हालांकि व्रती इसी घर का लड़का था, लेकिन फिर भी उसकी निर्मम हत्या हो जाने के

बाद उसके बाद, भाई, बहनें अपने-अपने समाज में किस तरह उसकी मौत का ब्यौरा देते हुए अटपटा महसूस करेंगे, उन्हें कितनी असुविधा होगी यह सब व्रती ने मरने से पहले नहीं सोचा और इसी से इनके सजे-संवरे, अचंचल जीवन में थोड़ी-सी उथल-पुथल मच गई। इसी उथल-पुथल के कारण वह आज इनके लिए मृत है। इन लोगों ने मन-ही-मन दो गुट बना लिए हैं।"' हमारे श्रेष्ठ समाज और अभिजाज्य पारिवारिक संस्कार' अपने घर के युवकों की ऐसी हरकतों और क्रियाकलापों के कारण अपमानित और फंसा हुआ तो महसूस करते हैं लेकिन हम यह भी भूल जाते है कि ऐसी परिस्थितियां पैदा करने में हमारी भूमिका भी कम सक्रिय नहीं रही है। हम लोग जाने-अनजाने अपने और अनजाने युवाओं तक को ऐसी संघर्षपरक और सामाजिक उद्वेलन की भट्टी में झोंक देते हैं जिससे पर राजनेता अपने हिसाब से रोटियां सेकते हैं, हमें उन राजनेताओं में कोई खोट नजर नहीं आता, लेकिन सच के लिए, अपने अधिकार के लिए, अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध आवाज उठाने वाले इन युवाओं में दुनिया भर की बुराईयाँ दिखाई देती हैं। हम उन्हें निकम्मा, गलत और पथभ्रष्ट मानते हैं, उनकी मौत पर हमें कोई खास अफसोस भी नहीं होता और कई बार तो हमें लगता है कि इन आतंकवादियों को, समाज विरोधियों को दण्डित करना जरूरी है. ... सही है. हम इन युवाओं की समस्या नहीं समझते.. बस सरकारी गोली से उनकी खोपड़ी उड़ाने पर तमाशबीन बनकर अनमने संतोष और गौरव से भर उठते हैं। हमारे समाज की संवेदनाओं, मानवीयता और बुद्धि पर भी शायद ताले पड़ गए हैं। महाश्वेता देवी ने इस प्रकार की सामाजिक निष्कृष्टता को '1084वें की मौं' में एक प्रसंग के आधार पर सामने रखा है- "कई हजार लड़कों की उपेक्षा करो. पूरी तरह से अवहेलना करो, इसी तरह उनका असितत्व मिट जाएगा जेलों में ओर जगह नहीं है ? हजार-हजार लड़के लापता हैं ध्यान मत दो. बिल्कुल आंखें ढंक लो, इसी तरह उनकी सत्ता का निशान भी नहीं रहेगा। लेकिन उनका परिवार, वर्ग उसकी भी उपेक्षा करके क्या उन्हें अस्तित्वहीन करने की नीति अपनाई जाए।""

समु जैसे नक्सली युवकों के मरने के बाद उनकी माँ-बहनों के साथ सभ्य माना जाने वाला समाज जैसा व्यवहार करता है. उसे देखकर तो मूर्ति बनी दुर्गा भी कुपित हो जाए.. लेकिन इस समाज की और सुसंस्कृत, जिममेदारी नागरिक की बेहयाई और क्रूरता ऐसी चीजों की परवाह नहीं करती. उन मिट चुके युवाओं के परिवार वालों को भी प्रताड़ित और परेशान करने में कोई कमी नहीं रखती। ऐसे युवाओं का, उनके परिवारजनों का दर्द, उनकी भावनाएँ, जीवन संघर्ष की छटपटाहट और पल-पल अपमानित होकर घुटने-मरने को सभ्य और सुसंस्कृत माने जाने वाले समाज ने कभी समझा ही नहीं। समाज के गणमान्य और प्रतिष्ठित लोगों से लेकर सत्ता में बैठे रसूखदार लोगों तक को यह लगता है कि ऐसे छोटे-मोटे आआंदोलनों और आंदोलनकारियों को तो कुचल कर कचरे की तरह नष्ट कर देना चाहिए. तभी तो सुजाता जैसी माताएं समाज की इस सोच और व्यवहार से आहत होती हैं- नहीं विचलित होने की कोई बात नहीं, क्योंकि ऐसी महत्वपूर्ण कोई घटना नहीं हुई।

कुछेक हजार लड़के नहीं है अब, यह सही है लेकिन उससे किसी का क्या आता - जाता है ? किसी माँ के मन में यह बात आती थी या नहीं, पता नहीं। लेकिन सुजाता के मन में तब भी यह बात उठती थी कि सिर्फ पश्चिमी बंगाल के तरूण ही आज त्रस्त हैं ताड़ना और हत्या के योग्य हैं, फिर भी इन हत्याओं की तुलना में और भी महत्वपूर्ण घटनाएं देश की कितनी ही और दूसरी जगहों पर घटित हो रही हैं। उन लोगों का अस्तित्व, उनकी पीड़ा, निश्चित मृत्यु के सामने अडिग विश्वास इस सब कुछ को पूरे राष्ट्र ने उस दिन अस्वीकार किया था।"'

समस्या केवल समाज के उच्चतर लोगों को लेकर ही नही है अपितु ऐसे संघर्षशील युवाओं का विरोध और उनके साथ विश्वासघात करने वाले और लोग भी है। कई बार तो ऐसे आन्दोलनकारियों के साथी ही उनके साथ धोखा करते हैं और षडयन्त्रपूर्वक उन्हें मरवाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। व्रती की मित्र और प्रेयसी नन्दिनी भी ऐसे ही लोगों को आन्दोलन की कमजोरी सच्चे कार्यकर्ताओं की मौत और पराजय का कारण मानती है जिन्होंने अपने ही साथियों के साथ धोखा किया-" अब सुजाता की समझ में आया 7 अनिंध का नाम लेते समय उसकी आँखों में विस्मय की छाया बादल की तरह क्यों तैर गई थी। अनिंध के विश्वासघात करने पर यह विस्मय नहीं था। विस्मय था व्रती पर, खुद अपने पर और दूसरे लोगों पर यथार्थ की हर व्यवस्था के लिए आस्थाहीनता पर ही उनका प्रचंड विश्वास था। इसी को उन्होंने जीवन का मूल्य बनाया था लेकिन इसके साथ-साथ कुछ लोग बड़े सुनियोजित रूप से विश्वासघात के इरादे पाल रहे हैं, दोस्त बनकर धोखा देने की योजना बना रहे हैं, यही बाद में जानने की हैरानी थी नन्दिनी को।

नक्सलवादी आन्दोलन बहुत हद तक मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित रहा है और इसमें धार्मिक आस्थाओं और वर्जनाओं की बजाय सामाजिक और आर्थिक यथार्थ को जानकर समझकर उसके अनुरूप मानवीय आचरण करने पर अधिक बल दिया गया है। व्रती, ललटू या समु जैसे लोग कर्म में यकीन करते हैं, उनकी दृष्टि में धर्म के कारण पाखंड और ढोंग रचने वाले लोग ही गरीब जनता का हिस्सा खा रहे हैं या ऐसे घृणित कार्य में सहयोग कर रहे हैं। हमारा धर्मभीरू समाज ऐसे युवकों की इस प्रकार की बातों से कुपित और कुद्ध हो उठता है और ऐसे अनास्थावादी, ईश्वरविरोधी लोगों को समाज के लिए खतरा मानकर उन्हें दण्ड प्रायः मृत्युदण्ड देने की वकालात करता है। स्पष्टतया व्रती और उस जैसे सैकड़ो हजारों लड़कों के संघर्ष को, उनकी मानसिकता को शिद्दत से समझने की जरूरत है। ऐसे संघर्षरत युवाओं की समस्या को अखबार और ऐसे ही अन्य समाचार साधन अपने-अपने ढंग से विश्लेषित- व्याख्यायित और प्रचारित प्रसारित करते हैं। माना जा सकता है कि मीडिया - विशेषकर स्थानीय मुद्दों और उपेक्षित या पिछड़े क्षेत्रों को 'कवर' करने वाला मीडिया अपने उद्देश्य में कहीं न कहीं भटका और समाज तथा सरकार के सामने उसने इन आंदोलनकारी युवाओं का वह रूप प्रस्तुत नहीं किया, जिसे सामने लाने की आवश्यकता थी और जिसके कारण इस प्रकार के आन्दोलनों का कोई सर्वमान्य हल निकलने की संभावना बन सकती थी। वस्तुतः युवाओं की सही तस्वीर सबके सामने पेश होनी चाहिए, उनकी समस्याओं पर निर्णयकारी और तर्कसंगत बहस होनी चाहिए। हमारे देश की कुल आबादी में महत्वपूर्ण भाग नौजवानों का है, समाज में नौजवानों का जितना अधिक अनुपात होता है, उसमें सांस्कृतिक और सामाजिक बदलाव की संभावना उतनी ही ज्यादा होती है। इस बदलाव की प्रकृति रचनात्मक हो सकती है अथवा विध्वंसकारी भी (जैसी कि व्रती, समु और ललटू की है) और यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि युवाओं की ऊर्जा किस दिशा में मोड़ी जाती है, और उन्हें किस तरह के अवसर मुहैया कराए जाते हैं।

टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल सांइसेज की एसोसिएट प्रोफेसर लता नारायण के अनुसार - "सन् 2007 की यूएनडीपी रिपोर्ट बताती है कि सार्थक नागरिक बनने के लिए दो बड़े कारकों की जरूरत होती है और वे हैं। युवाओं का सामर्थ्य और अपनी पसन्द का उपयोग कर पाने में उनकी स्वतन्त्रता युवाओं की भागीदारी को कई स्तरों पर आंका जा सकता है। राष्ट्रीय सेवा योजना (जिसके साथ 200 विश्वविद्यालयों के 2.60 करोड़ स्वयं सेवक जुड़े हुए है) नेहरू युवा केन्द्र संगठन (जिसके साथ 80 लाख गैर-छात्र ग्रामीण नौजवान संबंधित हैं) और स्काउट तथा गाइड सरीखी सरकारी योजनाओं से उम्मीद की जाती है कि ये युवाओं को रचनात्मक गतिविधियों में लगाएँ, पर ऐसी गतिविधियों में उनकी भागीदारी बस नाम मात्र की ही है क्योंकि इस नेटवर्क का असर सरकारी रिपोर्टों में सतही उल्लेख को छोड़कर और कहीं नजर नहीं आता।"" युवा जब उक्त प्रकार की रचनात्मक गतिविधियों में मन नहीं लगा पाते या उनका परिवार अथवा समाज उन्हें ऐसे कार्यों के लिए प्रेरित नहीं करता तो वे भटक कर कई बार अतिवादी विचारधाराओं से जुड़े जाते हैं।

'1084वें की माँ' का व्रती परिवार और समाज के ऐसे ही भावनात्मक तिरस्कार और असमर्थन के कारण नक्सलवादी गतिविधियों की ओर मुड़ता है और ऐसे ही विचारधारा रखने वाले एवम् ऐसे ही कार्य करने वाले लोग उसे अच्छे लगने लगते हैं। ऐसे आन्दोलनों के पीछे प्रायः राजनेताओं की स्वार्थपरायणता भी होती है जो ऐसे नौजवानों को इस प्रकार की विध्वंसकारी आग में धकेल कर खुद फायदा उठाते हैं। कदाचित राजनीति से आजकल के युवाओं का मोह उक्त प्रकार की स्थितियों के कारण बिल्कुल नहीं बचा है। वे राजनेता और राजनीति के नाम पर बिदकते हैं। दुर्भाग्य से आज का युवा राजनीति को सत्ता के गंदे खेल के बराबर मानता है इसलिए वह इसे दूर ही रहना पसन्द करता है। व्यापक नजरिए से देखें तो राजनैतिक गतिविधि बदलाव की ऐसी प्रक्रिया है जिसका मार्गदर्शन सामाजिक वास्तविकताओं की राजनैतिक समझ करती है। ऐसी प्रक्रियाएं ज्यादातार छात्र संगठनों में नहीं के बराबर है।

ऐसा नही है कि युवा केवल पथभ्रष्ट, भटके हुए हैं या व्रती की तरह नक्सलवाद जैसी विचारधारा से ही जुड़ना पसन्द करते हैं बल्कि हालात इसके उलट भी हो सकते हैं। नर्मदा बचाओ आन्दोलन और चिपकों जैसे आन्दोलनों से मोटे तौर

पर ऐसे नौजवान जुड़े हुए हैं, जिन्होंने विकास की प्रकृति पर ही उंगली उठाई थी और जो प्रशासनिक, राजनैतिक और आर्थिक प्रणालियों में ढांचागत बदलाव चाहते थे। आज यदि युवा उद्वेलित उत्तेजित और क्रुद्ध है तो इसका कारण है कि युवाओं को अब भी ऐसे समूह के रूप में देखा जाता है जिस पर निगरानी रखना और जिसके काम में हस्तक्षेप करना जरूरी समझा जाता है। हमें याद रखना चाहिए कि वे आज के नागरिक हैं, आने वाले कल के नहीं। उम्मीद तो युवा प्रयासों में ही निहित रहती है जो दर्शाता है कि वे बदलाव के प्रवर्तक हो सकते हैं। यदि उनका दृष्टिकोण सीमित सिद्ध होता है तो गलती हमारी है क्योंकि उनकी करनी या क्रियाकलाप बदलाव को लेकर हमारे सीमित नज़रिए की ही झलक देती हैं, आवश्यकता इस बात की है कि हम युवाओं के अन्त्तमन में जाकर उनके विचारों को समझने का प्रयास करे ताकि किसी भी प्रकार के समाज में कोई भी व्रती, समु या ललटू की तरह बेमौत न मार जाए, उसकी ऊर्जा का भटकाव से ग्रसित उपयोग न हो। माता-पिताओं को भी अपने जवान बेटों के विचार समझने की जरूरत है, इस बात की भी जरूरत है कि पिता दिव्यनाथ की तरह की जीवन-शैली ना अपनाए और माताएं सुजाता की तरह समय पर अपने बच्चे की पीड़ा ना समझने के कारण उसे जाने-अनजाने हिंसक रास्ते पर जाने से रोक ना पाने की स्थिति पर विराम लगाएं।

समाज में अनेक जटिलताएँ हैं और स्वार्थ की अनेक गलियां भी हैं जिनमें पुरुष प्रधान मानसिकता हमेशा पहरा देती हैं और स्त्री चोर की तरह डरी-बिदकी अपने अधिकारों को हासिल करने के लिए हाथ-पैर मारती है, उसकी इसी दब्बू मानसिकता के कारण उसकी संतानों पर भी प्रभाव पड़ता है और स्वयं उसे भी कई प्रकार के कष्ट सहने पड़ते हैं।
वह पुरूष की गुलाम होकर रहती है या विद्रोह और विरोध भी करती है तो सुजाता की तरह एक दायरा बुनकर ही। क्या कारण है कि एक बेटा तो गरीब और हाशिए पर धकेले गए लोगों के लिए मरने-मारने पर उतारू हो जाता है और दूसरी संतानें अनैतिकता, स्वार्थ और विलासिता में आकण्ठ डूबी रहती है? स्पष्टतया इसका कारण संस्कारों की कमी, वास्तविक प्रेम का अभाव और माता-पिता द्वारा बच्चों को परिपूर्ण समय न दिया जाना ही है। पुरूष के अत्याचारों से दबी नारी अपनी सुरक्षा और संभाल कर ले तो वह ढंग से बच्चे भी संभालेगी अन्यथा वह सुजाता की तरह बिखरी मानसिकता और अनमनी स्थिति में पहुंचकर रह जाएगी। पुरूष के अत्याचारों से नारी का मन और शरीर दोनो आर्तनाद करते हैं परन्तु पुरूष की अहं प्रवृत्ति, उसके पुरूष होने का दंभ उसे नारी को द्वितीयक उपभोग्य और साधन ही बनाए रखने की सलाह देता प्रतीत होता है। आवश्यकता इस बात की है कि पुरूष नारी को बराबर का दर्जा दे, घर और समाज में व्यवस्था में उसे समानता और आदर प्रदान करें, अन्यथा नारियों का आर्तनाद विद्रोह में भी बदल सकता है और यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई तो सामाजिक और पारिवारिक ताना-बाना टूटने में देर नहीं लगेगी दिव्यनाथ और सुजाता का पारिवारिक और दाम्पत्य विच्छेद - सा जैसा हो गया है वैसे ही उदाहरण अनेक परिवारों में भी सामने आएंगे। छोटी-छोटी बातों से लेकर बड़े प्रसंगों तक पर तकरार और बहस होगी और पति-पत्नी का एक साथ, एक छत के नीचे रहना मुश्किल हो जाएगा। ऐसे हालात का असर बच्चों पर निसंदेह पड़ना ही है और वे बच्चे नीया, तुली या व्रती किसी भी प्रकार के हो सकते हैं। नीया या तुली जैसे पाखण्डी, कायर और विलासी बच्चों को तो समाज हाँ हूँ करके स्वीकार भी कर लेगा पर व्रती जैसे जीवटपूर्ण संघर्षशील बच्चों द्वारा जो मार्ग चुना गया है उसके कारण उन्हें जरूर सजा मिलेगी, वे जरूर समाज का 'विश्वास खो देंगे और प्रति उत्तर में व्रती जैसे लड़के भी समाज और रिश्तों पर, व्यवस्था पर विश्वास करना छोड़ देंगे। जिस बच्चे, किशोर या युवा के मन में घर बना लेती है, उसकी उम्र बारह, सोलह या बाईस की, चाहे जो भी हो, उसके लिए एक ही सजा निश्चित है- मृत्यु। छाती के बल जमीन पर रेंगने वाले, हवा का बदलता हुआ रूख देखकर मत बदल देने वाले, सुविधावादी कलाकार, साहित्यिक बुद्धिजीवियों के इस समाज को लोग घृणित समझते हैं- उन लोगों की सजा है मौत। सबको उनकी हत्या का अधिकार है। सब दलों और मतों के लोगों को इन दलहीन तरूणों की हत्या करने का निर्बाध, जनतांत्रिक अधिकार है। कानून की अनुमति इसके लिए नहीं चाहिए।""
ऐसी ही स्थितियों का और अधिक खुलासा करते हुए महाश्वेता देवी ने समाज की पाश्विकता और क्रूरता के बारे में लिखा है-" इन आस्थाहीन तरूणों की अकेले या एकसाथ, झुंड के झुंड की हत्या की जा सकती है। गोली, छुरा, भाला, बल्लम- जो कोई भी हथियार मिले, उससे शहर के किसी भी हिस्से में, किसी भी दर्शक या दर्शकों के सामने ऐसे तरूणों को

मारा जा सकता है।" व्रती जैसे युवाओं के काल, समु की बहन जैसी, लड़कियों का अनवरत झरने जैसा दर्द, नन्दिनी जैसी लड़कियों के अपूर्ण प्रेम की छटपटाहट और प्रेमी की दर्दनाक और षडयंत्रपूर्वक की गई मौत का बदला लेने की उग्रता, समु जैसे युवाओं की ऊर्जा का बेनामी भरी गलियों में खोजन.....भी के लिए हमारे समाज का वह श्रेष्ठ वर्ग जिम्मेदार है जिसे बुद्धिजीवी, विद्वान और नीति-नियता माना जाता है और जो अपनी गलत नीतियों की वजह से युवाओं की ऊर्जा का उपयोग करने के तरीके न सुझाकर 'समाजहित' में उन्हें कुचलने पर ही जोर देता रहता है। ऐसे प्रबुद्ध लोग बिनी और ज्योति के दाम्पत्य जीवन की दिखावट को अनुकरणीय मानते हैं पर गरीब और हताश वर्ग के लिए लड़ने वाले व्रती और समु जैसे लोगो को, उनकी मानसिकता को खारिज करते है। कहा जा सकता है कि महाश्वेता देवी कृत '1084 वें की माँ' उपन्यास सकारात्मक प्रभाव छोड़ने वाला और समाज से प्रासंगिक प्रश्न पूछकर उसके यथार्थ परक जवाब पेश करने वाला है।

संदर्भ:

1. दिव्या यशपाल, पृष्ठ सं. 101
2. रंगभूमि' प्रेमचन्द, पृष्ठ सं. 70-71
3. 1084वें की माँ' महाश्वेता देवी,, पृष्ठ सं. 58
4. प्रेमाश्रम' प्रेमचन्द, पृष्ठ सं. 15
5. 1084वें की माँ' महाश्वेता देवी, पृष्ठ सं. 29
6. 1084वें की माँ' -महाश्वेता देवी, पृष्ठ सं.- 29-30
7. इंडिया टूडे 22 अप्रेल 2009, पृष्ठ सं. 64
8. 1084वें की माँ महाश्वेता देवी, पृष्ठ सं. -71-72
9. 1084 वें की माँ- महाश्वेता देवी, पृष्ठ सं.- 89
10. 1084वें की मी महाश्वेता देवी पृष्ठ सं. -72
11. 1084वें की माँ महाश्वेता देवी, पृष्ठ सं. 39